जैन सांस्कृतिक चेतना के स्वर

डॉ. भागचन्द्र जैन
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
महाकवि ज्ञानसागर जैनदर्शन पीठ

ज. रामानन्दाचार्य
राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय,
जयपुर
२०१४

जैन सांस्कृतिक चेतना के स्वर

महामहोपाध्याय, जैनरत्न

डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
महाकवि ज्ञानसागर जैनदर्शन पीठ
ज. रामानन्दाचार्य
राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

@ लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित प्रथम संस्करण २०१४

मूल्य :

प्रकाशक
ज. रामानन्दाचार्य
राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, ग्राम मदाऊ,
पोस्ट–भांकरोटा, जयपुर–३०२०२६

प्रकाशकीय वक्तव्य

जैनधर्म भारतीय धर्मों में कदाचित् प्राचीनतम धर्म है। सिन्धु-हडप्पा के उत्खनन में प्राप्त कायोत्सर्गिक दिगम्बर मूर्ति तथा ऋग्वेद में प्राप्त तीर्थंकर ऋषभदेव और उनकी परम्परा से सम्बद्ध उल्लेख इस तथ्य को प्रमाणित करने में संकोच नहीं करते। उसकी दर्शन ज्ञान और चारित्र की परम्परा ने समूची भारतीय संस्कृति को गहराई से प्रभावित किया है। उसकी अहिंसा, अनेकान्तवाद और अपरिग्रहवाद ने संसारी प्राणियों को एक ओर वैयक्तिक और सामाजिक संघर्षों से मुक्त रहने का एक सशक्त माध्यम दिया वहीं दूसरी ओर समन्वय और सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए मनोरम वातावरण उपस्थित कर मानवता और सामाजिक समरसता को स्थिर रूप देने के लिए अपना महनीय योगदान दिया। इस दिशा में जैनकला इतिहास, संस्कृति, पुरातत्त्व और वाङ्मय भी अविस्मरणीय केन्द्रबिन्दु हैं जिनके अविरल प्रवाह ने भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा को नूतन प्रशस्त पाथेय दिया है।

महामहोपाध्याय प्रोफेसर भागचन्द्र जैन हमारे विश्वविद्यालय के जैनदर्शनपीठ के संमान्य अध्यक्ष हैं। उन्होंने **'जैन सांस्कृतिक चेतना के स्वर'** नामक इस पुस्तक में जैनधर्म से सम्बद्ध लगभग हर पहलू पर सप्रामाणिक विचार किया है। वे संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के गम्भीर अध्येता हैं, राष्ट्रिय, अन्तर्राष्ट्रिय ख्याति के विद्वान हैं और राष्ट्रपति पुरस्कार आदि दसों उच्चकोटि के साहित्यिक पुरस्कारों से पुरस्कृत हैं।

आशा है, डॉ. जैन की प्रस्तुत पुस्तक जैनधर्म को समझने के लिए एक सुन्दर साधन के रूप में मानदण्ड स्थापित करेगी। उनको शतशः बधाइयां और शुभकामनाएं।

प्रोफेसर रामानुज देवनाथन्
कुलपति
ज.रा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान
दि. २८.०७.२०१३

प्रस्तुति

भारतीय तत्त्वज्ञान के प्रायः दो विभाग माने जाते हैं - अध्यात्म विद्या और न्यायविद्या अथवा अन्वीक्षिकी या तर्कशास्त्र। अध्यात्मविद्या मोक्षशास्त्र को स्पष्ट करता है जो परमार्थ सत्य की परिधि में आता है। इसी को श्रेयस् कहा जाता है। इसके विपरीत प्रेयस् है जिसका सम्बन्ध इन्द्रियजन्य सुख भोगों से है जो व्यवहार मार्ग है। वैदिक विचारधारा का विकास उपनिषदों में हुआ है जिसमें संसार और कर्म के यत्किंचित् जो उल्लेख मिलते हैं उन पर जैनधर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। श्रेयार्थी के लिए क्षमा, दान, त्याग, तपस्या आदि आवश्यक हैं। षड्तीर्थकों में भी यह निवृत्ति और प्रवृत्ति परम्परा रही है। इसी से पुरुषार्थ चतुष्टय का जन्म हुआ। जैन परम्परा पूर्णतः निवृत्तिपरक रही। मध्यकाल में भक्ति के कारण उसमें नया मोड दिखाई दिया। इस दृष्टि से जैनधर्म में कतिपय विकास के चरण देखे जा सकते हैं -

१) अहिंसात्मक रूप - तीर्थंकर ऋषभदेव ने अहिंसक समाज की स्थापना की और उसमें सामाजिक समता का प्रारूप स्थापित हुआ। वीतरागी निर्ग्रन्थ को पूज्य माना। महावीर तक यही स्थिति बनी रही।

२) पुरुषार्थ मिश्रित अध्यात्म रूप जिसमें परमार्थ की व्याख्या हुई और दिगम्बरत्व की साधना को दृढतर बनाया गया। पूर्व पर आधारित आगमों की संरचना हुई और दर्शन निश्चयनय और व्यवहारनय की ओर मुड गया। आचार्य भद्रबाहु, पुष्पदन्त-भूतबली और कुन्दकुन्द जैसे आध्यात्मिक आचार्यों ने धर्म को इसी रूप में देखा। संघ और सम्प्रदायों की स्थापना हुई।

३) व्यवहार का मूल्य अधिक बढा, भक्तिवाद आया, कला का विकास हुआ और निश्चयनय कुछ ओझल सा हो गया। साम्प्रदायिक विकास हुआ।

४) दार्शनिक विकास हुआ। प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण की मीमांसा हुई और अनेकान्तवाद की प्रस्थापना से जैन दर्शन और साहित्य का विकास हुआ। लगभग बारहवी शताब्दी तक यही स्थिति रही।

५) धार्मिक, साहित्यिक और कलात्मक ह्रास प्रारम्भ हुआ। जैनधर्म को अनेक संघर्षो से गुजरना पडा। राजनीतिक आश्रय कम हुआ। लोकप्रियता घटी। मुसलिम आक्रमणों के कारण कतिपय नये पन्थों ने जन्म लिया। यह स्थिति लगभग १८वीं शताब्दी तक रही।

६) आधुनिक काल में साम्प्रदायिकता का विकास हुआ, परस्पर संकीर्णतावादी प्रवृत्ति बढी परन्तु सामुदायिक चेतना ने जैनधर्म का प्रभाव बढाया। आदर्श और यथार्थ का समन्वय हुआ।

जैनधर्म विवेक पूर्वक स्वतन्त्रता प्राप्ति का पक्षधर रहा है। प्रमाता, प्रमा और प्रमेय के यथार्थ अनुसन्धान की दिशा में चरण बढाते हुए आत्मानुसन्धान में उसका पर्यवसान दिखाई देता है। रत्नत्रय की आराधना ही उसके लिए श्रेयस् मार्ग रहा है। दुःख सत्य का साक्षात्कार करते हुए वस्तु तत्त्व की मीमांसा करके सांसारिक बन्धनों से मुक्त होना और परमात्मपद प्राप्त करना ही उसका मुख्य लक्ष्य रहा है। मानवतावादी वृत्ति उसका पवित्र साधन है। आत्मचिन्तन करते हुए कार्मिक पुद्गलों से मुक्त होकर अनन्त चतुष्टय को प्राप्त करना ही उसका यथार्थ परमार्थ रहा है। यही उसकी साध्य-साधन की पवित्रता रही है।

इस पुस्तक में हमने जैनधर्म-दर्शन एवं संस्कृति पर प्रामाणिक ढंग से उपर्युक्त विकासात्मक चरणों के आधार पर ही अपनी विचार-मीमांसा प्रस्तुत की है। इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टि से जैनधर्म और वैदिकधर्म समकालीन लगते हैं। वे वस्तुतः परस्पर पूरक हैं, विरोधी नही हैं। जैन परम्परा ने कहीं भी उसकी निन्दा नहीं की। आचारांग में तो उसकी प्रशंसा की गई है। सिन्धु-हडप्पा के पुरातत्त्व ने जैनधर्म के मूल रूप में ऐतिहासिक तथ्य पर दिगम्बरत्व की स्थापना की है। पालि साहित्य ने उसके इस इतिहास रूप पर अपनी मुहर लगा दी है। शेष रूप सांस्कृतिक विकास के परिणाम हैं। तत्त्वमीमांसा, ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा के आधार पर जैनधर्म और दर्शन की यह प्रस्तुति सुधी पाठक को सन्तुष्ट कर सकेगी ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है। हमारी अपनी सीमाएं रही हैं और उन सीमाओं में रहकर ही हमने तत्त्वचिन्तन को प्रस्तुत

किया है। इस प्रस्तुति में कमियां अवश्य दिखेंगी। उनसे अवगत होने पर साभार हम आगामी संस्करण में उन्हें समाधानित करने का यथाशक्य प्रयत्न करेंगे।

इस ग्रन्थ को तैयार करने में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय के मनीषी विद्वद्वरेण्य कुलपति प्रोफेसर रामानुज देवनाथन् के हम अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने समय-समय पर स्नेहिल प्रेरणा और सुझाव देकर हमें उपकृत किया है। इसी तरह कुशल प्रबन्धक रजिस्ट्रार श्री सत्यप्रकाश, पूर्व अनुसन्धान अधिकारी प्रोफेसर गजाननमिश्र तथा डॉ. ताराशंकर शर्मा, निदेशक अनुसंधान केंद्र, प्रो. देवर्षि कलानाथ शास्त्री, प्रो. दयानन्द भार्गव के भी हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने पर्याप्त सुविधाएं देकर हमारे शोधकार्य में अनवरत सहायता प्रदान की है। इसी प्रसंग में अपनी विदुषी पत्नी प्रोफेसर डॉ. पुष्पलता जैन का सहयोग भी अविस्मरणीय है जिन्होंने गाहर्स्थिक भार से मुक्त रखकर ग्रन्थ को पूरा करने में अपनी समिधा अर्पित की है। हम ज.रा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर के भी आभारी हैं जिसने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। यहीं हम उन लेखकों के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं जिनके ग्रन्थों का उपयोग कर हमने सामग्री एकत्रित की है।

यहां हमने श्रीलिपि में श और ष वाची शब्दों में यथावश्यक परिवर्तन करने का यथाशक्य प्रयत्न किया है फिर भी यदि असावधानीवश कहीं वह रह गया हो तो कृपया सुधी पाठक उसे सुधार कर पढें और इस असुविधा के लिये क्षमा करें। इसी तरह पाठकों की सुविधा की दृष्टि से हम आवश्यक उद्धरण नीचे या अंत में न देकर साथ में ही देते गये हैं।

प्लाट न. ए/१, नारायण सागर,
ब्लॉक ए, गोपालपुरा बाईपास,
असरपुरा, जयपुर (राजस्थान)
स्थायी पता :
तुकाराम चाल, सदर
नागपूर-४४०००१

प्रोफेसर भागचन्द्र जैन
अध्यक्ष
महाकवि ज्ञानसागर जैन दर्शनपीठ
फो. ०७१२-२५४१७२६, ०९४२१३६३९२६
दि. २८.०२.२०१४

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आइरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्वसाहूणं

विषय - सूची

अध्याय १

जैन संस्कृति के विकास में वैदिक ऋषि–परम्परा का योगदान **१ – ४४**

वैदिक साहित्य -४, परम्परा और इतिहास - ७, वैदिक ऋषि परम्परा और श्रमण जैन संस्कृति -९, आर्य जाति -१०, वैदिक वंशावली और श्रमण परम्परा १६, ऋग्वेद और जैन परम्परा - १७, जैन पौराणिक राज्यवंशावली -१९, ऋग्वेद की परम्परा : हडप्पा और उपनिषद् - २७, सैन्धव और हडप्पा सभ्यता - २९, प्राक् आर्यधर्म - २९, वैदिक ऋषियों की समन्वय शीलता -३१, वैदिक समाज के अनार्य - ३३, असुर -३३, दास और आर्य-३३, पणि - ३४, व्रात्य-३४, हडप्पा और मगध-३५, श्रमण संस्कृति के विकास में वैदिक ऋषियों का योगदान-३७,

अध्याय २

जैनधर्म का वैशिष्ट्य और उसकी सार्वभौमिकता **४५–१०६**

जैन श्रमण परम्परा और उसका सांस्कृतिक वैशिष्ट्य -४५, जैन संस्कृति का मर्मः मानवीय मूल्य -४६, आत्मा ही परमात्मा है-४७, आत्म-स्वातन्त्र्य-४८, समतावाद-४९, चारित्रिक विशुद्धि-४९, अनेकान्तवाद-५१, अहिंसा और अपरिग्रह-५२, रत्नत्रय की समन्वित साधना-५३, उपयोग और भक्ति-५४, सामाजिक समता-५६, वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और कर्मवाद -५६, जैन संस्कृति का अवदान-५७, दार्शनिक अवदान-५८, कलात्मक अवदान-५९, एकात्मकता और राष्ट्रियता- ६१, लोकबोली प्राकृत का प्रयोग-६६, जैनाचार : पर्यावरण का मुख्य संरक्षक-६८, जैनधर्म की सार्वभौमिकता-७१, अहिंसा और विश्वबन्धुत्व -७२, मानवतावाद-७४, निवृत्तिवादी तत्त्व -७५, लोकतन्त्रात्मकता और आत्मपुरुषार्थवृत्ति-७७, स्वतन्त्र आचरणशीलता और सर्वोदयवादिता - ७८, सहिष्णुता -७९,

कर्मवादिता और तपोवृत्ति - ७९, आध्यात्मिक साम्यवाद -८०, जैनधर्म एक जीवन पद्धति है -८२, जैनधर्म और आधुनिक विज्ञान -८५, जैनधर्म की प्रासंगिकता -८८, आधुनिक युग में विदेशों में जैनधर्म -९३, जैनधर्म इक्कीसवीं सदी में -९९,

अध्याय ३

जैन संस्कृति एवं पुरातत्त्व **१०७–१९४**

आर्य समस्या और जैन पुरातत्त्व - १०७, विविध सिद्धान्त-१०८, ऋग्वेद का काल निर्णय -१०८, सप्त सिन्धु आवास-१०९, आद्य परम्परा और पृष्ठभूमि-११४, प्रवृत्ति-निवृत्ति परम्परा का संमिश्रित रूप-११६, जैनधर्म की ऐतिहासिक परम्परा-११७, तीर्थ परम्परा और इतिहास-११८, जैन परम्परा और इतिहास के मूल स्रोत-११९, कालचक्र-१२२, कुलकर व्यवस्था-१२४, त्रेषठ शलाका पुरुष और धर्मप्रवर्तन-१२५, त्रिषष्टिशलाका पुरुषों के चरित्र का मूल स्रोत-१२६, इतिहास और परम्परा-१२७, तीर्थंकरों का अन्तरकाल-१२९, ऋषभदेव-१२९, तीर्थंकर और बुद्ध : परम्परा और अवतारवाद-१३१, १२ चक्रवर्ती-१३२, ९ बलभद्र-१३३, तीर्थंकर-१३५, तीर्थंकर ऋषभदेव : जीवन और योगदान-१३७, सिन्धु-हड़प्पा संस्कृति -१३८, वैदिक कालीन पुरातत्त्व, भाषा और संस्कृति-१४०, सिन्धु-हड़प्पा सभ्यता का उद्घाटन और वैदिक समस्या-१४२, आर्य आक्रमण का मिथक -१४४, क्या सिन्धु-हडप्पा संस्कृति श्रमण जैन संस्कृति थी?-१४५, वैदिक संघर्षो की प्रकृति-१४८, आर्थिक आधार-१५१, तीर्थकर ऋषभदेव का ऐतिहासिक मूल्यांकन-१५२, अहिंसक आर्य संस्कृति के प्रस्थापक-१५२, प्राचीन व्रात्य परम्परा के जनक-१५५, मुनि परम्परा के प्रस्थापक-१५७, हिरण्यगर्भ और ऋषभदेव-१५८, औपनिषदिक दर्शन पर ऋषभ संस्कृति का प्रभाव-१५९, ऋषभदेव का निर्वाण स्थल अष्टापद -१६५, शिव की पौराणिक कथाओं का विश्लेषण-१६६, ऋषभ के पश्चात् मध्यवर्ती अन्य तीर्थंकर-१६९, तीर्थंकर नेमिनाथ या अरिष्टनेमि-१७१, पार्श्वनाथ और महावीर-

१७३, महावीर का समतावादी पुरातत्त्व दर्शन-१७९,जैन कला और स्थापत्य-१८१, मूर्तिकला-१८१, स्तूपकला एवं गुहा मन्दिर-१८६, स्थापत्य-मन्दिर कला-१८६, चित्रकला-१९०, काष्ठ शिल्प-१९२, अभिलेखीय व मुद्राशास्त्रीय शिल्प -१९२, एकात्मकता और राष्ट्रीयता-१९३।

अध्याय ४

तीर्थंकर वर्धमान महावीर और उनका अवदान **१९५–२५४**

महावीर का चुम्बकीय व्यक्तित्व-१९५, तीर्थंकर महावीर का युग-१९८, तीर्थंकर महावीर की मूल परम्परा-१९९, प्रतीकात्मकता-१९९, तीर्थंकर महावीर की चरित परम्परा-२०१, तीर्थंकर महावीर चरित की परम्परा-२०२, विविध जीवन घटनाओं की तथ्यात्मकता-२०४, परम्पराओं में उलझी महावीर की जीवन घटनाएं-२०५, जन्म और जन्मस्थान-२०७, तीर्थंकर वर्धमान का गर्भ और जन्म कल्याणक-२११, गर्भ परिवर्तन-२१२, बाल्यावस्था-२१३, गार्हस्थिक जीवन-२१३, महाभिनिष्क्रमण-२१४, छद्मस्थकाल और वर्षायोग-२१५, छद्मस्थकालीन उपसर्ग-२१५, केवलज्ञान प्राप्ति और धर्मचक्रप्रवर्तन-२१७, गणधरों की खोज-२१९, प्राकृतः अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम-२२१, धर्मप्रचार और वर्षावास-२२३, संघ प्रमाण-२२३, परिनिर्वाण-२२४, पार्श्वनाथ और महावीर का सम्बन्ध-२२७, जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्त-२२९, अहिंसा-२३१, अहिंसा और पर्यावरण-२३२, शाकाहार-२३७, अनेकान्तवाद२३९, अपरिग्रह-२४०, कर्मवाद-२४२, महावीर युगीन संस्कृति-२४९, राजनीजिक स्थिति-२५२, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था-२५३,

अध्याय ५

जैन संघ और सम्प्रदाय **२५५–३०२**

आचार्य काल गणना-२५५, आचार्य भद्रबाहु-२५६, निन्हववाद-२५९, मूलसंघ-२६०, काष्ठासंघ-२६३, यापनीय संघ-२६५, भट्टारक सम्प्रदाय-२७३, तेरहपन्थ और वीसपन्थ-२७७,

तारणपन्थ-२७८, श्रीमद्रायचन्द्र पन्थ-२७९, कानजी स्वामी पन्थ-२८०, श्वेताम्बर संघ और सम्प्रदाय-२८१, अर्धफलक सम्प्रदाय-२८१, सान्तरोत्तर व्यवस्था-२८२, स्थविरकल्प-२८४, चैत्यवासी संप्रदाय-२८७, खरतरगच्छ-२९, तपागच्छ-२९०, स्थानकवासी सम्प्रदाय-२९१, तेरापन्थ सम्प्रदाय-२९२, समन्वयात्मक दृष्टि-२९४, आचार विषयक मतभेदों का इतिहास-२९५, दर्शन विषयक मतभेदों का इतिहास-२९६, संघभेद की भूमिका-२९७, जैन संघ के विकास के सोपान-३००,

अध्याय ६

जैन तत्त्व–ज्ञान–दर्शन **३०३–३९२**

१. तत्वमीमांसा, सत्यसंधान और तर्क-३०४, द्रव्य का स्वरूप-३०६, जीव या आत्मवाद-३०९, जीव वर्गीकरण-३१४, शरीर के प्रकार-३१७, २) अजीव (पुद्गल)-३१९, आधुनिक विज्ञान और परमाणुवाद-३२०, आत्मा और कर्म-३२२, कर्मवाद : पुद्गल मीमांसा-३२४, कर्म का मूल स्रोत-३२५, आत्मा और कर्म का सम्बन्ध-३२७, कर्मबन्ध प्रक्रिया-३२८, आवेग और कर्म-३३१, कषाय और लेश्या-३३३, कर्म मुक्ति प्रक्रिया-३३४, कर्मवाद की उपयोगिता-३४०, लोक सृष्टि प्रक्रिया-३४३, लोक सृष्टि प्रक्रिया-३४६, प्रतीक प्रयोग-३४८, धर्म और अधर्म-३५२, आकाश-३५२, आकाश-३५३,२) ज्ञानमीमांसा-३५४, प्रमाणः प्रत्यक्ष और परोक्ष, प्रमाण-३५४, साध्यप्राप्ति का मूलमन्त्रः रत्नत्रय-३५५, इन्द्रिय और मन-३५६, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान-३५७, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान-३५९, केवलज्ञान-३६०, प्रमाण मीमांसा-३६०, प्रमाण लक्षण-३६१, प्रत्यक्ष प्रमाण-३६३, सन्निकर्ष विचार-३६५, सर्वज्ञत्व विचार-३६६, ईश्वर कर्तृत्व विचार-३६७, प्रकृतिकर्तृत्व विचार-३६८, वेदों की अपौरुषेयता-३६९, शब्दनित्यत्व विचार-३६९, ज्ञान और प्रमाण-३७०, धारावाहिक ज्ञान-३७१, परोक्ष प्रमाण-३७१, वादकथा-३७३, मोक्ष विचार-३७४, जैन और जैनेतर दर्शन-३७७, जैनदर्शन और वैदिक

दर्शन-३७७, जैनदर्शन और वेदान्त-३८०, जैनदर्शन और बौद्धदर्शन-३८२, जैनधर्म और ईसाई धर्म-३८५, इस्लाम-३९० ।

अध्याय ७

जैन आचार मीमांसा **३९३–४४४**

धर्म और नीति-३९३, शुद्ध चेतना का विकास-३९७, धर्म-क्षेत्र में नयी चेतना-३९९, सप्ततत्त्व-४००, रत्नत्रय का समन्वित रूप - साधक तत्त्व-४०१, बाधक तत्त्व-४०४, साधक और साधना व्यवस्था-४०५, पाक्षिक श्रावक-४०७, नैष्ठिक श्रावक-४११, भक्ति तत्त्व-४१३, जिनपूजा-४१४, स्तोत्र परम्परा-४१६, मन्त्र परम्परा-४१६, योग-ध्यान परम्परा-४१७, तीर्थाटन-४१९, उत्तरभारत, पूर्वी भारत - बिहार, बंगाल और उडीसा, मध्यभारत-४२०, पश्चिम भारत, दक्षिण भारत-४२२, साधक श्रावक : सल्लेखना-४२४, मरण के प्रकार-४२५, जैनेतर दर्शनों में सल्लेखना की अवधारणा-४२६, एींहरपरीळर और सल्लेखना (डळीळींरश्र वशरींह)-४२७, गुणस्थान : अध्यात्मिक विकास के सोपान-४३०, शाकाहार-४३३, श्रमणाचार-४३५, मूलगुण-४३६, उत्तरगुण-४३८, भिक्षु प्रतिमायें -१२-४३८, सामाचारिता -१०-४३९, मार्गणा और प्ररूपणा-४३९, चारित्र के भेद-४४०, श्रमण संघ के नियामक तत्त्व-४४०, उपकरण-४४०, संघ व्यवस्था-४४१, उत्सर्ग एवं अपवाद मार्ग-४४२, पदविहार-४४३, वर्षावास और व्यवहार-४४३ ।

अध्याय ८

भारतीय भाषाओं में जैन साहित्य **४४५–५०२**

प्राकृत और अपभ्रंश-४४५, जैन साहित्य की रूपरेखा-४४९, आगम संकलन- वाचनाएं-४५१, पूर्व परम्परा-४५२, चौदह पूर्व-४५३, श्रुतः परिचय और लोप-परम्परा-४५५, श्वेताम्बर परम्परानुसार द्वादशांगी की पदसंख्या-४५६, दिगम्बर परम्परानुसार द्वादशांगों की पद-४५७, दृष्टिवाद का लोप-४५९, श्रुत-विच्छिन्नता का क्रम और श्रुतावतार का यथार्थ-४६१, आगम साहित्य,अर्धआगधी

आगम साहित्य-४६४, आगमिक व्याख्या साहित्य-४६७, शौरसेनी आगम साहित्य-४६८, प्राकृत का अन्य साहित्य-४७०, संस्कृत साहित्य-४७१, चूर्णि साहित्य-४७२, कर्म साहित्य-४७४, सिद्धान्त साहित्य-४७६, न्याय साहित्य-४७७, योग साहित्य-४७९, आचार साहित्य-४८०, भक्तिपरक साहित्य-४८०, पौराणिक और ऐतिहासिक काव्य साहित्य-४८१, कथासाहित्य-४८४, ललित वाङ्मय-४८५, लाक्षणिक साहित्य-४८६, अभिलेख साहित्य-४८८, अपभ्रंश साहित्य-४८९, अन्य भारतीय भाषाओं का जैन साहित्य, तमिल जैन साहित्य-४९२, कन्नड जैन साहित्य-४९३, मराठी जैन साहित्य-४९५, गुजराती जैन साहित्य-४९६, हिन्दी जैन साहित्य-४९६, धार्मिक सहिष्णुता और भावात्मक एकता-४९७, शोध की सम्भावनाएं-५०१ ।

अध्याय ९

जैनधर्म की सामाजिक चेतना **५०३–५७०**

सामाजिक चेतना के आद्य सृष्टा ऋषभदेव-५०३,जाति-वर्ग विहीन समाज-५०५, वर्ण व्यवस्था-५०८, आश्रम व्यवस्था-५०९, विवाह व्यवस्था-५११, संस्कार-व्यवस्था-५१३, गर्भान्वयक्रिया-५१४, दीक्षान्वय क्रिया-५१६, क्रियान्वय क्रियाएँ-५१७, परिवार व्यवस्था-५१९, नारी की स्थिति-५२०, महावीरोत्तर काल में नारी की स्थिति-५२४, सांस्कृतिक योगदान -५३१, जिन पूजा-५३४, पर्व और त्योहार-५३७, दीपावली : प्रकाशपर्व-५३८, रक्षाबन्धन पर्व, अक्षयतृतीया, जनसेवा-५३९, जैन समाज का वैशिष्ट्य-५४०,जनसंख्या, अहिंसा और सामाजिक चेतना-५४३, अहिंसा और विश्वशान्ति-५४७, अहिंसा और नैतिकता-५४९, अहिंसा की साधना -५५०, अहिंसा और सह-अस्तित्व-५५१, जैन समाज के जातिगत भेद-प्रभेद-५५५, दक्षिण भारत की दिगम्बर जैन जातियां-५६३, श्वेताम्बर समाज की कतिपय उपजातियां-५६४, ओसवाल-५६५, पोरवाल-५६९ ।

अध्याय १०

जैनधर्म का प्रचार–प्रसार ५७१–६२०

ऐतिहासिक जैन व्यक्तित्व-५७१, तीर्थंकर युग-५७२, नन्द मौर्य युग (ल. ५००-२०० ई.पू.)-५७३, सम्राट् खारखेल (ई.पू. २०० से ई. २०० तक)-५७४, गंग-कदम्ब-पल्लव-चालुक्य-५७७, राष्ट्रकूट-चोल-शिलाहार-उत्तरवर्ती कलचुरि-५७८, होयसल राजवंश -५७९, दक्षिण के उपराज्य एवं सामन्तवंश-५८०, उत्तर भारत (२०० ई. १२५० ई.)-५८०, कल्चुरि वंश-५८७, जेजाकभुक्ति (बुन्देलखण्ड) के चन्देल-५८७, बंगाल के पाल और सेन-५८८, शिलाहार-५८९, मध्यकाल पूर्वार्ध (१२००-१५५० ई.)-५८९, मध्यकाल उत्तरार्ध (१५५६-१७५६ ई.)-५९२, उत्तरमध्यकाल के राजपूत राज्य-५९६,राजस्थान में जैनधर्म-५९६, आधुनिक युगः देशी राज्य (१७५७-१९४७ ई.)-६०१, आधुनिक युग :- अंग्रजों द्वारा शासित प्रदेश-६०२, स्वातन्त्रोत्तर युग-६०३, विदेशों में जैनधर्म-६०४, श्रीलंका में जैनधर्म-६०४, वर्मा तथा अन्य देश-६०५, 'श्रमण' दर्शन की व्यापकता-शमण धर्म-६०६, योग और ध्यान-६०८,कर्मकांडीय व्यवस्था-६०८, पुरोहितवाद-६०९, अंतर यात्रा-६०९, प्राकृतिक तत्त्व-६१०, आत्मयात्रा-६११, अध्यात्मवाद-६११, आत्मसाधना-६१२, माया संस्कृति-६१४, जैनधर्म में पुनर्जागरण-६१७,

अध्याय ११

जैनकला और पुरातत्त्व ६२१–६६८

भारतीय पुरातत्त्व के मौलिक सिद्धान्त-६२२, पुरातत्त्व का मानविकी और वैज्ञानिक विषयों से सम्बन्ध-६२२, पुरातत्त्व के विकास का इतिहास-६२३, भारतीय पुरातत्त्व का इतिहास-६२३, पुरास्थलों का अन्वेषण (Site Sarveying)-६२५, कालानुक्रम-६२७, हडप्पा-सिन्धुघाटी की कला-६२७, वैदिकसभ्यता -६२८, वैदिक पुरातत्त्व वास्तुकला-६२८, बौद्धकला-६३०, स्तूप-६३१, स्तूप

समाधि का रूप, भरहुत स्तूप-६३१, सांची सतूप-६३२, विहार-६३२, मृण्मय खिलोने-६३३, स्तम्भ-६३३, गुफाएं-६३३, बौद्ध पार्वतीय चैत्य गृह और विहार-६३३, मथुरा की शुंग और कुषाणकला (८० ई.पू. - २ री शती)-६३४, आन्ध्रसातवाहन युग के स्तूप-६३४, गान्धार शैली-६३५, मूर्तिकला-६३६, चित्रकला-६३७, जैन कला और पुरातत्त्व-६३७, कला और पुरातत्त्व-६३९, स्थापत्य कला-६४०, प्राचीन लिपि ज्ञान-६४१, प्राचीन मुद्राएं-६४१, भूगर्भशास्त्र-६४१, सैन्धव सभ्यता और जैन परम्परा-६४५, उत्तरकालीन जैन पुरतत्त्व परम्परा-६४५, चैत्यवृक्ष, यक्ष, यक्षिणी और चिन्ह-६४७, जैन मूर्तिकला-६५१, गुहाशिल्प-६५५, मन्दिर शिल्प-६५५, चित्रकला-६५९, काष्ठ शिल्प-६६१, अभिलेखीय व मुद्राशास्त्रीय शिल्प-६६१, जैन पुरातत्त्व-६६२,

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची ६६९–६७१

चित्रसूची